इकाई 4 बृहदारण्यक उपनिषद्– मैत्रेयी–याज्ञवल्क्य संवाद

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 बृहदारण्यक उपनिषद् के महत्त्व का प्रतिपादन

4.3 बृहदारण्यक उपनिषद् का शान्ति पाठ

4.4 याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद की तात्त्विक विवेचना

4.4.1 याज्ञवल्क्य से मैत्रेयी का प्रश्न

4.4.2 याज्ञवल्क्य जी द्वारा मैत्रेयी को उद्बोधन

4.4.3 आत्मा के स्वरूप के विषय में उद्बोधन

4.5 ब्रह्म की एकरूपता का प्रतिपादन

4.5.1 ब्रह्म की एकरूपता का अग्नि के दृष्टान्त से प्रतिपादन

4.5.2 ब्रह्म की एकरूपता का जल के दृष्टान्त से प्रतिपादन

4.5.3 ब्रह्म की एकरूपता का सिन्धु के दृष्टान्त से प्रतिपादन

4.6 मैत्रेयी के खिल्य भाव का याज्ञवल्क्य जी द्वारा निवारण

4.6.1 महद् भूत की जिज्ञासा सम्बन्धी उपदेश

4.6.2 द्वैत और अद्वैत का स्वरूप

4.7 सारांश

4.8 शब्दावलियां

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

वैदिक साहित्य विशेषरूप से शुक्ल यजुर्वेद के बृहदारण्यक उपनिषद् से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- शुक्ल यजुर्वेदीय उपनिषदों का परिचय दे सकेंगे
- बृहदारण्यक उपनिषद् के महत्त्व का प्रतिपादन कर सकेंगे।
- बृहदारण्यक उपनिषद् की रूपरेखा को जानने में आपको सरलता होगी।
- बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रश्नकर्ता और उनके प्रश्न तथा महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दिये गये उत्तर को समझकर आप उनकी व्याख्या भी कर सकेंगे।
- बृहदारण्यक उपनिषद् से सम्बन्धित याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी संवाद को आप पूर्णरूप से अध्ययन कर सकेगें।
- बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रतिपादित ब्रह्म ज्ञान को भी आप जान सकेगें।
- बृहदारण्यक उपनिषद में प्रयुक्त विशेष शब्दों से भी आपका परिचय होगा।

4.1 प्रस्तावना

यजुर्वेद के अन्तर्गत दो विभाग हैं–शुक्ल यजुर्वेद एवं कृष्ण यजुर्वेद। इसमें कृष्ण यजुर्वेद की परम्परा ब्रह्म सम्प्रदाय के माध्यम से प्रवर्तित हुई जबकि शुक्ल यजुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् योगीश्वर याज्ञवल्क्य हैं। भाष्यकार पतंजलि यजुर्वेद की 101 शाखाओं का उल्लेख करते हैं, (एकशतमध्वर्युशाखाः)। उनमें वर्तमान समय में शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएं ही प्रसिद्ध हैं–

1. काण्व शाखा 2. माध्यन्दिन शाखा

इस समय कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएं ही उपलब्ध हैं –

1. **तैत्तिरीय** 2. **मैत्रायणी** 3. **कठ** एवं 4. **कपिष्ठल**।

कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण भी प्राप्त होता है। शुक्ल यजुर्वेद के मन्त्रद्रष्टा योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने शुक्ल यजुर्वेद का पाठ अपने दो शिष्यों – माध्यन्दिन और काण्व को दिया। इसलिये ये दोनों संहितायें शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और काण्व संहिता के नाम से भी जानी जाती हैं। शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता, वाजसनेयि संहिता के नाम से भी व्यवहृत है। दोनों ही संहिताओं में चालीस–चालीस अध्याय हैं तथा अन्तिम अध्याय ईशावास्योपनिषद् के रूप में हैं। यद्यपि काण्व संहिता के ईशावास्योपनिषद् में दो मन्त्र अधिक हैं अर्थात् इसमें 18 मन्त्र हैं। इन दोनों संहिताओं के ब्राह्मण भी अलग अलग हैं। एक को काण्व शतपथ ब्राह्मण तथा दूसरे को माध्यन्दिन शतपथ के रूप में जाना जाता है। दोनो ही ब्राह्मणों में बृहदारण्यक उपनिषद् का भाग भी सम्मिलित है। अतः मूल रूप से यह कहा जा सकता है कि यह उपनिषद् शतपथ ब्राह्मण ही है लेकिन यह अंश विशेष रूप से ब्रह्म विद्या का उपदेश करता है इसलिये ज्ञानकाण्ड के रूप में रखा गया है। यजुर्वेद के वर्तमान समय में सात उपनिषद् उपलब्ध हैं –तैत्तिरीय, महानारायण, कठ, मैत्रायणी, श्वेताश्वतर, ईश तथा बृहदारण्यकोपनिषद्। जिसमें ईश तथा बृहदारण्यकोपनिषद् का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है तथा शेष पांच उपनिषदों का कृष्ण यजुर्वेद से। बृहदारण्यक उपनिषद में कुल छः अध्याय हैं । अध्यायों का विभाजन ब्राह्मण के नाम से किया गया है। प्रस्तुत इकाई का विवेचन द्वितीय अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण के चौदह मन्त्रों में प्राप्त होता है ।

4.2 बृहदारण्यक उपनिषद् के महत्त्व का प्रतिपादन

बृहदारण्यक उपनिषद् अपने नाम के अनुरूप ही एक विशाल उपनिषद् है। वस्तुतः यह उपनिषदों में सबसे बड़ा है। इस पर शंकराचार्य जी ने भाष्य भी विस्तार के साथ किया है। अनेक प्रकार की तात्त्विक चर्चायें हैं। कुल छः अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के ब्राह्मण हैं। प्रथम अध्याय में छः ब्राह्मण हैं। द्वितीय में भी छः ब्राह्मण हैं। तृतीय अध्याय में नौ ब्राह्मण हैं। चतुर्थ अध्याय में छः ब्राह्मण हैं। पंचम अध्याय में तेरह ब्राह्मण हैं छठे अध्याय में पांच ब्राह्मण हैं। प्रत्येक ब्राह्मण के अपने–अपने अनेकों पाठ हैं। इस प्रकार कलेवर की दृष्टि से विशाल यह उपनिषद् बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अनेक संवादों के माध्यम से ब्रह्म को समझाने का उपदेश किया गया है जैसे– गार्ग्य और अजातशत्रु का संवाद, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद, एवं जनक– याज्ञवल्क्य संवाद आदि अनेक महत्त्वपूर्ण संवाद हैं। सभी तत्त्वों पर विशेष व्याख्यान किया गया है। भूत, महाभूत, मर्त्य, अमर्त्य, मूर्त, अमूर्त, सत, असत, ब्रह्म, ब्रह्मविद्या आदि का विषद् विवेचन है । वायु और अन्तरिक्ष अमूर्त हैं, ये अमृत हैं । पृथ्वी आदि तीन भूत मूर्त हैं । अतः

विश्लेषण ही मुख्य हैं कि ब्रह्म का क्या स्वरूप है, उसकी प्राप्ति का फल आदि अनेक तथ्य प्रतिपादित किये गये हैं । ब्रह्मविद्या प्रत्येक उपनिषद् का विषय है। वैसे तो ब्रह्म प्रज्ञा से अथवा नाम रूप से अनेक रूपों वाला जाना जाता है लेकिन परमार्थतः वह अनेक रूपों वाला नहीं होता है। अपनी एकरूपता से ही वह अविद्या से उत्पन्न प्रज्ञा से अनेक रूप में भासित होता है। ब्रह्म का कोई कारण नही है वह बोद्धा है, अर्थात् जानने वाला है, सर्वानुभू है, सब प्रकार अनुभव करता है । वह अमृत और अभय है ।

जो ब्रह्मवेत्ता ऐषणा से सम्बन्ध नहीं रखते। इच्छा होगी तो कर्म करेंगे और कर्म का स्वरूप अज्ञानमय होता है, विद्या का स्वरूप ज्ञानमय होता है। यही वेदान्त दर्शन है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य किस गति को प्राप्त होता है और कर्म से क्या प्राप्त करते हैं। कर्म और ज्ञान एक दूसरे के विरोधी हैं, दोनों का स्वभाव अलग है। जीव कर्म से बंधता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है । ब्रह्मविद्या समस्त साधनों को त्याग कर पुरुषार्थ का साधन बनती है। ब्रह्मविद्या से याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद में अमृतत्त्व का साधन बताया गया है। सबका अधिष्ठान यह ब्रह्म ही है, और यही ब्रह्म ही आत्मा अर्थात् सर्वरूप है । इस इकाई में बृहदारण्यक उपनिषद् के याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद के अन्तर्गत आने वाले विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला जायेगा ।

4.3 बृहदारण्यक उपनिषद् का शान्ति पाठ

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूणात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
ऊँ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः!!!

पर ब्रह्म परमात्मा ने सृष्टि के विस्तार के लिये अपनी इच्छा मात्र से कार्य ब्रह्म को उत्पन्न किया। पर ब्रह्म परमात्मा पूर्ण है (**ऊँ पूर्णमदः**) और कार्य ब्रह्म भी पूर्ण (**पूर्णमिदं**) है क्योंकि पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है (**पूर्णात्पूर्णमुदच्यते**) । यहाँ तक उस अविनाशी , अव्यय स्वरूप पर ब्रह्म परमेश्वर की स्थिति तथा उत्पत्ति का स्मरण करते हैं। पुनः वह प्रलयकाल में अपने ही कार्य ब्रह्म स्वरूप को मूल स्वरुप में मिलाकर एकाकार हो जाते हैं। उसी में लीन हो जाते हैं। इस तरह से हर स्थिति में पूर्ण ब्रह्म शेष रहता है। इसी के साथ त्रिविध ताप अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक ताप की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई है। अध्ययन प्रारम्भ करते समय शान्ति पाठ सभी प्रकार की शान्ति करने वाला है।

4.4 याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद की तात्त्विक विवेचना

बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रतिपादित याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी संवाद इस उपनिषद् के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में उपलब्ध चौदह मन्त्रों के रूप में संगृहीत है। महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ हैं– मैत्रेयी और कात्यायनी। महर्षि अब गृहस्थ आश्रम से विरत होकर संन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहते हैं लेकिन उसके पूर्व अपनी दोनों पत्नियों के बीच जो भी उनके पास है उसे बांट देना चाहते हैं । इस प्रसंग के साथ इस उपनिषद् का प्रारम्भ होता है–

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति।। 1।।

इस संवाद के माध्यम से गुरु के द्वारा शिष्य के प्रति ब्रह्मविद्या का विधान करना

इसका मुख्य उद्देश्य है। जिसका एक अंग सन्यास भी है। याज्ञवल्क्य गृहस्थ आश्रम में है, अब उससे ऊपर सन्यास आश्रम में जाना चाहते हैं, इसके लिए मैत्रेयी की अनुमति चाहते हैं और उनकी यह भी इच्छा है कि दूसरी भार्या कात्यायनी एवं मैत्रेयी के बीच धन का बंटवारा कर देना चाहिए क्योंकि स्त्री, पुत्र एवं धन आदि रूप कर्म अविद्या का विषय हैं। यह आत्म तत्त्व की प्राप्ति का साधन नही हैं। जैसे भूख–प्यास का साधन दौड़ना नहीं हो सकता क्योंकि इनसे उसकी निर्वृत्ति नहीं होगी। अतः ये धन आादि आत्म ज्ञान के प्राप्ति के साधन नही हैं। ब्रह्म का ज्ञाता या अनुभव करने वाला व्यक्ति आत्मकाम होता है अर्थात् जिसने सांसारिक कामनायें और आसक्तियां त्याग दी हैं, वह आप्तकाम है। ब्रह्मविद्या वही है जहाँ समस्त क्रिया, कारक और फल का निषेध हो जाता है। इस विद्या में कार्य सहित अविद्या नही रहती। भगवत्पाद शंकराचार्य जी भाष्य में व्यास वाक्य का सन्दर्भ देते हैं– **कर्मविद्यास्वरूपयोर्विद्याविद्यात्मकयोः प्रतिकूलवर्तनं विरोधः** (भाष्य २.४) अर्थात् कर्म का स्वरूप अज्ञानमय है और विद्या का स्वरूप ज्ञानमय है। कहते हैं कि यहाँ एक दूसरे के विपरीत होना, यह रूप विरोध है।

वस्तुतः ब्रह्मविद्या किसी अन्य साधन से नहीं जुड़ती, समस्त साधनों से निरपेक्ष होकर पुरुषार्थ का साधन होती है। संन्यास में समस्त साधनों का त्याग है। याज्ञवल्क्य गृहस्थ आश्रम में थे उन्होंने संन्यास लेने का संकल्प लिया और मैत्रेयी को अपने संकल्प की सूचना भी दी। परम्परा में यह आवश्यक बताया गया है कि संन्यास लेने के पूर्व पत्नी से अनुमति लिया जाय।

4.4.1 याज्ञवल्क्य से मैत्रेयी का प्रश्न

पति के संन्यास ग्रहण करने के संकल्प को सुनकर विशेष रूप से महर्षि द्वारा धन के बंटवारे के प्रसंग को लेते हुये मैत्रेयी उन्हें उत्तर देते हुये कहती हैं कि–

सा होवाच मैत्रेयी। यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितंस्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति।।2।।

मैत्रेयी अपना निश्चय भी प्रकारान्तर से याज्ञवल्क्य जी को सूचित करते हुये कहती हैं कि– यदि यह समस्त ऐश्वर्य से परिपूर्ण पृथिवी मुझे प्राप्त हो जाय तो क्या में अमरत्व प्राप्त कर सकती हूं अर्थात् क्या जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो सकती हूं। मैत्रेयी के वचन से यही स्पष्ट हो रहा है कि वह भी कर्म रूप साधन से रहित है, धन की निन्दा भी मैत्रेयी के द्वारा की जा रही है। कर्म अमृतत्त्व का साधन नही है। धन की निन्दा तभी उचित हो सकती है, जब कर्म का त्याग करना अभीष्ट होगा।

कर्म करने के लिये जो वर्णाश्रम आदि हैं उनसे भी निवृत्ति होनी चाहिये। क्योंकि यहाँ रहने पर ब्राह्मण को यह करना चाहिये, क्षत्रिय को यह करना चाहिये आदि विधान बने रहते हैं। उसका पालन भी गृहस्थ जीवन में अनिवार्य है। यह भी इससे प्रेरणा मिल रही है। इसलिये वर्णाश्रम धर्म के परित्याग से विधि का कोई विषय न रहने से कोई स्वरूप नही रहता। जो पुरुष ब्राह्मण और क्षत्रियत्व से निवृत्त हो गया उसे स्वतः ही कार्यभूत कर्म और कर्म के साधनों का संन्यास प्राप्त हो जाता है। यह आख्यायिका संन्यास का विधान करने के लिये प्रारम्भ की गई है।

आत्मज्ञान का अंग संन्यास भी है। इसलिए संन्यास का विधान किया गया है। याज्ञवल्क्य गृहस्थ कर्म को छोड़कर संन्यास आश्रम में जाना चाहते हैं, जो ब्रह्म विद्या का एक अंग है। दूसरा मन्त्र मैत्रेयी का उत्तर है। मैत्रेयी कहती हैं यह सम्पूर्ण पृथिवी

यदि मेरे नाम हो जाय तो मैं क्या उससे अमर हो सकती हूँ। मैत्रेयी ने धन की निन्दा की है। एक संपन्न मनुष्य की भांति जीवन यापन हो सकता है लेकिन धन से अमृत की आशा नही की जा सकती। मैत्रेयी अमृतत्त्व की इच्छुक है तो अमृतत्त्व की प्राप्ति के साधन का उपदेश चाहती हैं। इसलिये याज्ञवल्क्य जी से निवेदन करती है–

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ।।२.४.३।।

मै किस प्रकार अमृतत्व को प्राप्त कर सकती हूं, आप उसी को मेरे प्रति कहें अर्थात् उपदेश करें।

4.4.2 याज्ञवल्क्य जी द्वारा मैत्रेयी को उद्‌बोधन

उपर्युक्त प्रश्न को लेकर याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि– मैं अवश्य व्याख्यान करूँगा लेकिन मेरे वाक्यों के अर्थ का चिन्तन करना।

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिय बतारे नः सती प्रियं भाषस एह्यास्स्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति।। 2.4.4।।

इसके अनन्तर गद्यात्मक श्रुति के माध्यम से जो लगभग १६–२० पंक्तियों में हैं याज्ञवल्क्य जी विस्तार से बताते हैं। वस्तुतः इन श्रुतियों के माध्यम से ऋषि याज्ञवल्क्य अमृतत्त्व के साधन का उपदेश करते हैं। वैराग्य अमृतत्त्व का साधन है। स्त्री, पति एवं पुत्रादि में त्याग की भावना उत्पन्न करने के लिए तथा मैत्रेयी के अन्तःकरण में वैराग्य की भावना उत्पन्न हो, यही महर्षि याज्ञवल्क्य का उद्देश्य है। **सा होवाच न वा** यह शब्द प्रसिद्ध वस्तु की याद दिलाने के लिए है अर्थात् लोक में ऐसी प्रसिद्धि भी है। शांकर भाष्य में इस विषय पर और विस्तार से देख सकते हैं।

याज्ञवल्क्य का उपदेश– पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय है, **पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति**।। स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिय नहीं होती पति का अपना ही प्रयोजन है जो उसे स्त्री प्रिय होती है। पुत्र के प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय नहीं है, अपने ही प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय है। धन प्रिय होने में धन का प्रयोजन नहीं है धन अपने प्रयोजन के लिए होता है। इसी प्रकार मन्त्र में सभी वाक्यों के अर्थ को समझना चाहिए। प्रीति का सबसे सन्निकट जो साधन है उन्हीं का उपदेश पहले किया है क्योंकि वैराग्य अधिक से अधिक यहीं होना अभीष्ट है। **'सर्व'** शब्द का तात्पर्य जितने वाक्य कहे गये हैं और जो नहीं भी कहे गये हैं उन सभी साधनों को सूचित करने के लिए हैं। कहते हैं अपने ही प्रयोजन के लिए सब प्रिय होते हैं ऐसी व्याख्या करते करते याज्ञवल्क्य आत्मा पर आ जाते हैं और कहते हैं–

4.4.3 आत्मा के स्वरूप के विशय में उद्‌बोधन

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।।५।।

हे मैत्रेयी आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इन सबका ज्ञान हो जाता है। इन्हीं साधनों से ही इसका साक्षात्कार होता है। श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन रूप साधन से ही ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति हो जाती है। एक और बात है कि आत्मा में ही मुख्य प्रीति है अन्य प्रीति आत्मा के प्रीति का साधन है। इसलिए अन्य प्रीति गौण है।

आत्मा में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अविद्या से आरोपित हैं जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है। इसलिए श्रुति में कहा गया आत्मा का दर्शन, श्रवण आदि होने पर सब ज्ञात हो जाता है। आत्मा को छोड़कर कोई अन्य वस्तु नही होती। आत्मा ही सब कुछ है। आत्मा में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अविद्या से आरोपित हैं, यह आत्मा में प्रतीति का विषय है।

इसके आगे छठीं श्रुति में आत्मा सब कुछ कैसे है इसका ज्ञान होता है। सब कुछ आत्मा से ही उत्पन्न होता है, आत्मा में ही लीन होता है। स्थिति काल में भी आत्म स्वरूप ही होता है। इस श्रुति में जितने भी भूतों का उल्लेख है सब आत्मा ही हैं, ऐसा स्पष्ट किया गया है। सब भूत, जड़, चेतन उसी की आज्ञा के अधीन हैं तो जिसका जिसके स्वरूप से अलग ग्रहण नहीं किया जा सकता वह तद्रूप अर्थात् उसी की तरह ही होता है, उसी का रूप ही होता है। छठी श्रुति में आत्मा और जगत की अभिन्नता को दिखाया गया है। जाति को भी आत्मा से भिन्न नहीं मानना चाहिए। जाति के भेद से वह अनात्म नहीं है, परमात्मा सबकी आत्मा है।

"सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा" ।।६।।

इस श्रुति का तात्पर्य है कि जो कुछ भी दृश्य अदृश्य जगत् है वह आत्मा से भिन्न नही है। इसलिए कहा गया है, यह ब्राह्मण जाति, क्षत्रिय जाति, लोक, देव, भूत, और सर्प इस रूप से (**इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रं**) उनका उचित अनुक्रमणी या क्रम है। वे सब आत्मा में ही हैं। द्रष्टव्यता, श्रोतव्यता के कारण आत्मा की सर्वव्यापकता सिद्ध है। आत्मा से अलग कुछ भी ज्ञातव्य या प्राप्तव्य नहीं है। इसलिए सब कुछ आत्मा ही है। आत्मस्वरूप के ग्रहण में दुन्दुभी, शंख, और वीणा का दृष्टान्त देकर सर्वत्र परमात्मा की ही चित्स्वरूपता (ज्ञानरूपता) का वर्णन किया गया है। दुन्दुभी पर आघात से उसका ग्रहण यानी आघात के साथ साथ शब्द का भी ग्रहण हो जाता है। सामान्य का ग्रहण होने से उसके आन्तरिक विशेष का भी ग्रहण हो जाता है। आघात को अलग करके शब्द का ग्रहण नही किया जा सकता क्योंकि उसका तो अभाव है। शंख और वीणा का दृष्टान्त दिया गया है।

4.5 ब्रह्म की एकरूपता का प्रतिपादन

आठवें और नवें मन्त्र में भाष्यकार कहते हैं दुन्दुभी, शंख, और वीणा के सामान्य और विशेष शब्दों का उसी शब्द में अन्तर्भाव हो जाता है। वही स्थिति ब्रह्म की है कि वह स्थिति काल में सामान्य और विशेष से अभिन्न रहता है। यही ब्रह्म की एकता है।

दसवें मन्त्र के माध्यम से परमात्मा और ऋग्वेद आदि चारों वेदों की अभिन्नता का प्रतिपादन करना है। ब्रह्म की सत्ता तो सृष्टि के पूर्व की है, जब वायु भी नही था तब भी वह था इसीलिए पुरुष सूक्त में प्राण से वायु की उत्पत्ति कहा गया है। यहाँ पर अनेन का उद्धरण देते हैं कि जिस प्रकार चिंगारी, धूम, अंगार और ज्वालायें इस विभाग के पूर्व वह सब अग्नि ही हैं। इससे अग्नि की एकता सिद्ध होती है। उसी प्रकार नाम रूप विकार को प्राप्त यह जगत् उत्पत्ति से पूर्व प्रज्ञानघन ही था। यही अव्यक्त में व्यक्त संसार है, असत् में सत् की व्याप्ति है।

4.5.1 ब्रह्म की एकरूपता का अग्नि के दृष्टान्त से प्रतिपादन

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेत।दृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि ।।१०।।

याज्ञवल्क्य जी मैत्रेयी का उद्बोधित करते हुये कह रहे हैं कि– अग्नि से पृथक् धुआँ कब निकलता है जब ईंधन गीला होता है। इसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्र व्याख्यान और अर्थवाद हैं। ये सब इस महद् भूत के ही निःश्वास हैं। यहाँ पृथक् का मतलब 'नाना प्रकार का धुआं'। अग्नि से ही धुआं, चिनगारी आदि निकलते हैं। उसी प्रकार, हे मैत्रेयी ! बिना प्रयत्न के ही जैसे प्राणी की श्वसन क्रिया होती है उसी प्रकार उस विज्ञानघन से यह जगत् उत्पन्न है। वेद इसलिए प्रमाण माना जाता है क्योंकि बिना प्रयत्न के ही उत्पन्न हुआ है। जैसे पुरुष के निःश्वास बिना प्रयत्न के उत्पन्न होते हैं। आत्मा ही सबका आश्रय स्थान है, उसका कोई आश्रय नहीं है। जिस प्रकार जल के बुलबुले फेन आदि की सत्ता जल में ही रहती है, उसी प्रकार प्रज्ञान से भिन्न उसके कार्य और उसमें लीन रहने वाले नामरूप की सत्ता रहती है। इसलिए एक ही ब्रह्म, एक रस है।

4.5.2 ब्रह्म की एकरूपता का जल के दृष्टान्त से प्रतिपादन

ब्रह्म की एकरूपता का एक दृष्टान्त ग्यारहवें मन्त्र के माध्यम से और देते हैं – जैसे नदी, तालाब सभी जलों का एक ही स्थान समुद्र है, जलों के अभेद प्राप्ति का स्थल है। वायु आदि स्पर्शों का त्वचा एक स्थान है, समस्त गन्ध का दोनों नासिका एक स्थान है, समस्त रसों का जिह्वा, समस्त रूपों का चक्षु, समस्त शब्दों का श्रोत, समस्त संकल्प का मन, कर्मों का हस्त आदि आदि सभी का अपना अपना एक अयन है। समस्त वेदों का एक अयन वाक् है। चाहे अयन कहें या गमन कहें या प्रलय स्थान सबका समान अर्थ है। यह स्थान उनके अभेद प्राप्ति का स्थल है। जैसे समस्त स्पर्शों का त्वचा एक प्रलय स्थान है। इन्द्रियों के लय के विषय में दीपक से समझा जाता है कि दीपक से सभी रूप प्रकाशित होते है, तो दीपक सब प्रकार के रूपों को प्रकाशित करने का साधन मात्र है। उसी प्रकार इन्द्रियां भी दीपक की भांति अपने विशेष की प्रकाशक हैं, इसी कारण वह संस्थान मात्र हैं। विषय इन्द्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और दोनों का सजातीय सम्बन्ध है। विषय इन्द्रियों का गमन स्थान है, इसलिए कहा जाता है कि विषयों के प्रलय से इन्द्रियों का भी प्रलय है। विषयों के साथ इन्द्रियां अभेदात्मक सम्बन्ध से रहती हैं।

4.5.3 ब्रह्म की एकरूपता का सिन्धु के दृष्टान्त से प्रतिपादन

महर्षि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को, बारहवीं श्रुति के माध्यम से पुनः एक दृष्टान्त के साथ उपदेश देते हैं–

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते न हास्योद्ग्रहणायेव स्यात्। यतो यतस्त्वाददीत लवणमेवैवं वा अर इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव। एतोभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ।।12।।

जिस प्रकार जल में नमक का खण्ड डाल देने पर वह जल में ही लीन हो जाता है,

उसी में घुल जाता है, उसे निकालने में कोई समर्थ नहीं हो सकता, पूरा जल नमकीन हो जाता है। हे मैत्रेयी! उसी प्रकार यह महद् भूत अनन्त, अपार और विज्ञानघन है। यहाँ पहले सैन्धव खिल्य का तात्पर्य समझना चाहिए –सैन्धव खिल्यः – **सिन्धोर्विकारः सैन्धवः, सिन्धुशब्देनोदकमभिधीयते ।।** शांकर भाष्य

सिन्धु के विकार का नाम सैन्धव है। सिन्धु शब्द जल का पर्याय है । स्यन्दन बहाव के कण जल सिन्धु है । उससे उत्पन्न होने वाला सैन्धव है। सिन्धु नमक का कारण है। जल में पड़ने पर वह उसमें विलय हो जाता है, वह अपने कारण भूत के संयोग से उसका जो ठोस स्वरूप था वह समाप्त हो जाता है। यही है जल के साथ लीन होना।

श्रुति कह रही है कि– उसी प्रकार यह महद् भूत परमात्मा है। परमात्मा सबसे महान् है। आकाश का भी जनक होने से उसे महान् कहा जाता है। लोक में पर्वतादि भी महान् है परन्तु वह परमार्थ नही है, नित्य और अबाधित नही है। ब्रह्म नित्य और पारमार्थिक है इसलिए महद्भूत है। उसका अन्त नही है, इसलिए अनन्त है। वह विज्ञानघन है। श्रुति में कहा गया है – **"इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव"** ।।

घन शब्द से अन्य जाति के वस्तु का निषेध होता है– जैसे सुवर्ण घन लोहघन इसमें अन्य जाति के वस्तु का निषेध है, इसके भीतर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। घन शब्द के प्रयोग से विज्ञान में अन्य वस्तु का न होना निश्चित होता है। याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं। हे मैत्रेयी! यह महद्भूत विज्ञानघन ही है (विज्ञानं शुद्ध ज्ञान है) यह इन भूतों से प्रकट होकर उन्ही के साथ नाश को प्राप्त हो जाता है। भूत शब्द भी परमार्थवाची है । वह महत् है और पारमार्थिक है, इसलिए महद्भूत है।

4.6 मैत्रेयी के खिल्य भाव का निवारण

मैत्रेयी अविद्या के कारण खिल्यभाव को प्राप्त हो गयी हैं, खिल्यभाव का मतलब सांसारिकता जन्म मरण पिपासा आदि और मेरा जन्म अमुक वंश में है, ऐसे भाव वाली मैत्रेयी हो गयी हैं। इन्द्रियों के संपर्क से भ्रान्ति के कारण वह खिल्यभाव उत्पन्न हुआ है। जब यह खिल्यभाव अपने कारण अजर, अमर और जो सैन्धव घन के सामान एक रस है, और अविद्या से उत्पन्न भ्रान्ति से रहित है। उसमें प्रविष्ट कर दिया गया है। वह खिल्यभाव अपने कारण में लीन हो जाने पर भेदभाव का नाश हो जाता है। तब वह महाद्भूत अद्वैत ही रहता है। श्रुति में जो एव शब्द है वह निश्चयार्थक है। अपारम विशेषण दिया गया है उसके अनन्तता की कोई सीमा नही है। यह अर्थ निश्चित करने के लिए है।

यदि वह सांसारिकता से अछूता है, शुद्ध परमार्थता है तो उसमें उत्पन्न हुआ सुख दुख आदि सांसारिक धर्मों से दूषित क्यों है– यह आत्मा का विकार है। समुद्र में नदी के समान प्रज्ञानघन ब्रह्म में लीन हो जाता है। जल में प्रतिबिंबित सूर्य, चन्द्र, जल के समाप्त होने पर या जल के न रहने पर प्रतिबिम्ब नष्ट हो जाता है। केवल चन्द्रादि का पारमर्थिक स्वरूप रह जाता है। हे मैत्रेयी मैं अमुक हूँ, अमुक का पुत्र हूँ, यह क्षेत्र और धन मेरा है, मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ यह सब समाप्त हो जाता है। यह सब अविद्या का कारण है। अविद्या के कारण उत्पन्न होता है ।

मैत्रेयी! कारण सहित जब अविद्या का ब्रह्मविद्या से नाश हो जाता है, तो उस ब्रह्मवेत्ता की कोई संज्ञा नहीं रह जाती। इस प्रकार इस श्रुति के द्वारा याज्ञवल्क्य जी ने मैत्रेयी

के प्रति परमार्थ दृष्टि का निरूपण किया है। यथार्थ तत्त्व का जो नित्य वस्तु ब्रह्म है उसका स्वरूप वाचन किया है।

4.6.1 महद् भूत की जिज्ञासा सम्बन्धी उपदेश

चैतन्य स्वरूप अवस्था में जब ब्रह्मवेत्ता का शरीर है तब भी उसकी किसी प्रकार की संज्ञा नही रह जाती। जब वह देह और इन्द्रिय से युक्त होता है तो भी उसकी कोई संज्ञा नही होती ।

पुनः तेरहवीं श्रुति में मैत्रेयी कहती है कि– शरीरपात के अनन्तर कोई संज्ञा नही रहती, ऐसा कहकर आपने मुझे मोह में डाल दिया। याज्ञवल्क्य जी ने कहा– मोह का उपदेश नहीं कर रहा हूँ ।

किस प्रकार से वह ब्रह्म विज्ञानघन है और किस प्रकार देहपात के पश्चात् उसकी कोई संज्ञा नही है। एक ही अग्नि उष्ण और शीतल नहीं रह सकती इस विषय में भ्रम उत्पन्न हो गया है। याज्ञवल्क्य जी का कथन मोह का उपदेश नहीं हो रहा , महद्भूत को जानने के लिए यह उपदेश है।

याज्ञवल्क्य जी के द्वारा यह कहा गया कि– ये धर्म एक ही धर्मी में रहते हैं 'ऐसा मैंने नहीं कहा'। मैत्रेयी तुम्हें भ्रान्ति उत्पन्न हो गयी है। तुमने एक ही वस्तु को विरुद्ध धर्म वाली समझ लिया है।

वह विज्ञानघन है और उसकी कोई संज्ञा नही है । यही मैत्रेयी का भ्रम है।

याज्ञवल्क्य ने एक धर्मी में ये धर्म नही कहा है। याज्ञवल्क्य का उपदेश है कि देहेन्द्रिय उपाधि से सम्बन्धित जो खिल्य भाव है जैसे जन्म, मरण, क्षुधा, सांसारिक धर्मादि ये अविद्या के द्वारा उत्पन्न होता है और प्रस्तुत किया जाता है। इस खिल्य भाव का विद्या के द्वारा नाश कर दिया जाता है। परन्तु शरीरादि से सम्बन्धित होने के कारण उसके स्वरूप का अन्य भी दर्शन होता है। जब कोई हेतु नही होता तब वह इसी प्रकार नष्ट होती है जैसे जलादि का नाश होने पर चन्द्र आदि का प्रतिबिम्ब नष्ट हो जाता है किन्तु वास्तविक चन्द्रमा और सूर्य आदि का नाश नही होता है। उसी प्रकार यह विज्ञानघन असांसारिक है। संसार से उसका लेना देना नही है। वह सम्पूर्ण जगत् का आत्मा इसीलिये कहा गया है। भूतों के नष्ट होने पर भी उसका नाश नही होता है। उसी प्रकार यह विज्ञानघन असांसारिक है, संसार से उसका लेना नही है। सम्पूर्ण जगत् का आत्मा इसीलिए कहा गया है। भूतो के नष्ट होने पर भी उसका नाश नहीं होता है। विनाशी अविद्याजनित खिल्य भाव ही है, अन्य श्रुतियों से भी इसका समर्थन होता है–

वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्।। छान्दोग्य.6.1.4।।

खिल्य भाव अपने परमात्मा में अपने कारण समुद्रस्थानीय अजर, अमर, अभय, शुद्ध, अविद्या से उत्पन्न भ्रान्ति से रहित परमात्मा में प्रविष्ट हो जाता है।

हे मैत्रेयीं जिस प्रकार इसकी व्याख्या की गयी है, उसी प्रकार यह अनन्त, अपार महद् भूत को जान सकती हो। विज्ञानघन परमात्मा सम्पूर्ण जगत का आत्मा है। इसीलिए श्रुति कहती है– विज्ञाता के विज्ञप्ति अर्थात् विज्ञान शक्ति का सर्वथा लोप नहीं होता–

न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् ।।बृह..उप. .4.3.30।।

4.6.2 द्वैत और अद्वैत का स्वरूप

इस ब्राह्मण की अन्तिम श्रुति में द्वैत और अद्वैत का स्वरूप स्पष्ट होता है । हे मैत्रेयी! जिनके द्वारा इन सबको जाना जाता है उसे किसके द्वारा जानें, विज्ञाता को किसके द्वारा जानें। यह श्रुति बताती है कि व्यवहार द्वैत में है। ब्रह्म परमार्थ व्यवहार से परे है। शरीर न रहने पर अर्थात् मृत्यु के बाद उसे कैसे जाना जाता है, उसकी क्या संज्ञा हो सकती है आदि का समाधान किया गया है। जहाँ द्वैत सा होता है वही अन्य को सूंघता है। अन्य, अन्य को देखता है आदि ।

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं श्रृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं श्रृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन मन्वीत तत्केन कं विजानीयात्। येनेदं सर्वं विजानीयाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति ।।१४।।

द्वैतमिव द्वैत सा– भिन्न सा, अद्वैत ब्रह्म में द्वैत सा, आत्मा से भिन्न पदार्थ सा प्रतीत होता है । कहते हैं कि– यहाँ द्वैत की पारमार्थिकता सिद्ध हो सकती है, परन्तु श्रुति कहती है नहीं विकार वाणी से आरम्भ होने वाला है । इसलिए एक दूसरी श्रुति से यह प्रतिपादित होता है–विकार वाणी का है– **वाचारम्भणं विकारो नामधेयम ।**

एकमेवाद्वितीयं ।। छा० उ० ६.२.१
आत्मैवेदं सर्वम् ।। छा० उ० ७.२५.२

जल में पड़े हुए चन्द्र आदि के प्रतिबिम्ब के समान भिन्न है। वह जो कहा गया है कि द्वैत सा रहता है अर्थात् परमात्मा का खिल्य रूप वह अपारमार्थिक आत्मा उससे भिन्न है। यहाँ श्रुति में इतर इतरं जो रखा गया है, वह कारक को बताने के लिए है। कर्ता और कर्म का ज्ञान कराने के लिए इसका प्रयोग किया गया है।

जिघ्रति क्रिया है इससे क्रिया और फल का पता चलता है। अविद्या के रहते क्रिया कारक और फल का व्यवहार होता है, कारक के अभाव से क्रिया सम्भव नही है। क्रिया न रहने पर फल नहीं रहता। कारक क्रिया, फल अविद्या जनित हैं। ब्रह्मवेत्ता का ऐसा कोई व्यवहार नहीं है। उसकी दृष्टि में आत्मा से भिन्न कारक, क्रिया, अथवा फल होता ही नहीं है। आत्मा से भिन्न कोई पदार्थ की कल्पना नहीं की जा सकती। पारमार्थिक आत्मैकत्व का ज्ञान हो जाने पर क्रिया, कारक और फल की प्रतीति नहीं होती अर्थात् कोई भी किसी के द्वारा किसी प्रकार कुछ भी नहीं सूंघ सकता। आत्मा अपना ही विषय कैसे हो सकता है। अग्नि अपने ही को तो नहीं जलाती, उसी प्रकार आत्मा का गुण है ।

छिनत्ति को भी समझते हैं। कुल्हाड़ी उठा कर मारना और छेदन की गयी वस्तु का दो खण्ड में विभक्त हो जाना दोनों ही अर्थ एक ही शब्द से कहे जाते हैं। क्रिया की समाप्ति भी वही हो रही है, क्रिया के बिना उस फल की उपलब्धि भी नही होती। परमात्मा से भिन्न सूंघने वाला अपने से भिन्न घ्राणेन्द्रिय को मानता है, उससे भिन्न पदार्थ को भी समझता है, को सूंघता है, उसके लिए सब अन्य अन्य हैं । यह अविद्या के कारण है। इस अवस्था में भी जिसके द्वारा इस सबको जानता है उसे किसके द्वारा जानें। यह गूढता समझना चाहिए । जिसके द्वारा वह जानता है, वह इन्द्रिय भी विज्ञेय के अधीन है , ज्ञाता अर्थात् जानने वाले की जिज्ञासा भी ज्ञेय वस्तु में होती है, अपने में नही होती। आत्मा अपना विषय नहीं है। जो विषय नही है, उसका ज्ञान ज्ञाता को

कैसे हो सकता है ।

अतः जिसके द्वारा सब कुछ ज्ञात होता है, उस विज्ञाता को जो अनात्मा है, जो आत्म भिन्न पदार्थ है, जिसने अपने पर नियंत्रण नहीं किया है, अनात्म देहादि से उसे नहीं जाना जा सकता। हमारी चेतना वही है, हम उसी से चैतन्य हैं, जड़, चेतन सब उसी से चैतन्य हैं, घोर अंधकार में भी वही प्रकाश देता है। परन्तु परमार्थ का विवेक जिसके पास है उसके लिए ही वह अद्वितीय विज्ञाता ही विद्यमान रहता है। ऐसे विज्ञाता को किसके द्वारा जानेंगा। यही याज्ञवल्क्य के द्वारा मैत्रेयी को ब्रह्म विद्या का उपदेश किया गया है। ब्रह्म केवल प्रकाश है, एक महान शक्ति है, सर्वव्यापकता ही उसका गुण है ।

बोध या अभ्यास प्रश्न

1. **बृहदारण्यकोपनिषद् किस वेद से सम्बन्धित है –**

   क) यजुर्वेद

   ख) सामवेद

   ग) ऋग्वेद

   घ) अथर्ववेद

2. **बृहदारण्यकोपनिषद एक भाग है –**

   क) षड्विंश ब्राह्मण

   ख) शतपथ–ब्राह्मण

   ग) ऐतरेय–ब्राह्मण

   घ) जैमिनीय–ब्राह्मण

3. **शुक्ल यजुर्वेद के मन्त्रद्रष्टा हैं –**

   क) महर्षि जैमिनि

   ख) आश्वलायन

   ग) महर्षि याज्ञवल्क्य

   घ) महर्षि भरद्वाज

4. **इनमें कौन सा उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद का है–**

   क) तैत्तिरीय एवं महानारायण

   ख) मैत्रायणी एवं श्वेताश्वतर

   ग) कठोपनिषद् एवं मैत्रायणी,

   घ) उपर्युक्त में कोई नही

5. **याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी संवाद कितने श्रुतियों में पूरा होता है।**

   क) 14

   ख) 48

   ग) 16

   घ) 11

6.0 इनमें विज्ञानात्मा क्या नही है–

क) विज्ञानात्मा नामरूप से परे है।

ख) विज्ञानात्मा नामरूप से युक्त है।

ग) सब देवता उसी की विभूतियाँ हैं तथा उसी से उनकी भी शक्ति कार्य करती है।

घ) वही सबका प्रेरक है,

7. **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो** , यह वाक्य किसने कहा है–

क) कात्यायनी

ख) मैत्रेयी

ग) याज्ञवल्क्य

घ) किसी ने नही

1. ऋग्वेद आदि महद् भूत के निम्नलिखित में से क्या हैं–

क) उच्छवास

ख) प्राण

ग) स्वरूप

घ) निःश्वास

2. इन्द्रियों का किसके साथ अभेदात्मक सम्बन्ध है–

क) विषयों के साथ

ख) आत्मा के साथ

ग) ब्रह्म के साथ

घ) किसी के साथ नही

3. परमात्मा को महँ क्यों कहा जाता है–

क) महद्भूत होने से

ख) आकाश का जनक होने से

ग) विज्ञानघन स्वरूप के कारण

घ) इनमें से कोई नही

4. सैन्धव किसे कहते हैं–

क) सिन्धु प्रदेश के निवासियों को

ख) जल को

ग) सिन्धु के विकार को

घ) उपर्युक्त में कोई नही

5. ब्रह्म की एकरूपता का वर्णन निम्न में से किस मन्त्र द्वारा किया गया है–

क) स यथा सैन्धवखिल्य उदके

ख) स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा

ग) स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेव

घ) उपर्युक्त सभी के द्वारा

13. खिल्य भाव का तात्पर्य है–

क) जन्म–मरण, क्षुधा आदि सांसारिक धर्म

ख) सांसारिक प्रपंच से मुक्ति

ग) ज्ञान की अनुभूति

घ) .परमात्मा मे लीन हो जाना

14. इनमे से कौन सा गुण ब्रह्म का नही है–

क) सर्वव्यापकता

ख) अनित्य

ग) प्रकाशक

घ) सर्वशक्तिमान

15. निम्नलिखित में कौन अमूर्त है–

क) पृथिवी

ख) जल

ग) वायु

घ) अग्नि

16. याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद में किसके साधन का वर्णन किया गया है–

क) मोक्ष प्राप्ति के साधन का

ख) अमरत्व प्राप्ति के साधन का

ग) पुरुषार्थ के साधन का

घ) इनमें सभी साधनों का

4.7 सारांश

बृहदारण्यक उपनिषद् अपने नाम के अनुरूप ही एक विशाल उपनिषद् है। अनेक प्रकार की तात्त्विक चर्चायें हैं। कुल छः अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय के ब्राह्मण हैं। प्रथम अध्याय में छः ब्राह्मण हैं। द्वितीय में भी छः ब्राह्मण हैं। तृतीय अध्याय में नौ ब्राह्मण हैं। चतुर्थ अध्याय में छः ब्राह्मण हैं। पंचम अध्याय में तेरह ब्राह्मण हैं । छठे अध्याय में पांच ब्राह्मण हैं। इस प्रकार कलेवर की दृष्टि से विशाल यह उपनिषद् बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । अनेक संवादों के माध्यम से ब्रह्म को समझाने का उपदेश है।

बृहदारण्यक उपनिषद् के द्वितीय अध्याय का चतुर्थ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद के नाम से विख्यात है। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थी– मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थीं। याज्ञवल्क्य अपनी संपत्ति का बंटवारा करना चाहते हैं। दोनों मे से कात्यायनी धन की इच्छुक थी तथा मैत्रेयी को श्रेयश की कामना थी, अमृतत्त्व की अभिलाषा थी। उनकी दृष्टि में धन निन्दनीय वस्तु है। वे याज्ञवल्क्य जी से कहती हैं

कि– यदि सम्पूर्ण पृथिवी मेरी हो जाय तो क्या मैं अमर हो जाऊंगी। मैत्रेयी के द्वारा जब अपार धन की निन्दा की गयी तभी याज्ञवल्क्य ने उनकी तीव्र इच्छा जो परमार्थ तत्त्व को ग्रहण करने की थी समझ लिया, उन्हें उपदेश देने का निश्चय किया । १४ श्रुतियों में उनका उपदेश पूरा होता है।

मैत्रेयी कर्मरूप साधन से रहित हैं क्योंकि उनके प्रति ब्रह्मविद्या का उपदेश किया जा रहा है और धन की निन्दा भी किये जाने से भी यह सिद्ध होता है। अमृतत्त्व का इतना ही साधन है। श्रुति यह बताती है कि नामरुपाभिमानी देव वस्तुतः विज्ञानमय आत्मा नही हैं, विज्ञानात्मा नामरूप से परे है, वही सबका प्रेरक है, भोक्ता है। सब देवता उसी की विभूतियाँ हैं, उसकी सत्ता से ही उनकी भी शक्ति कार्य करती है। प्राणों का भी प्रेरक होने से वह प्राणों का प्राण है।

सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक ब्रह्म से जगत अभिन्न है, इस प्रकार उसकी सर्वव्यापकता का अनुभव कैसे हो इसके लिए महर्षि याज्ञवल्क्य आत्मा–अनात्मा, ज्ञान–अज्ञान, ब्रह्मवि॥ , और उस ब्रह्म से ही सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति आदि का उपदेश दिया है। उस परमात्मा के निःश्वास से ऋग्वेदादि का अभिन्नत्व का प्रतिपादन है। आत्मा सभी का आश्रय स्थान है इस पर अनेक दृष्टान्तों से उपदेश किया है । द्वैत के विषय में भी चर्चा की गयी है, द्वैत व्यवहार में होता है, परमार्थतत्त्व व्यवहार से परे है।

मैत्रेयी जब दृष्टि, कर्ता, क्रिया, करण में अभेद दृष्टि रखती है तो उसके लिए सब कुछ आत्मा ही है। पहली श्रुति में क्रिया का प्रयोग सूँघना, सुनना, अभिवादन, मनन आदि किया गया है। इन क्रियायों से ऊपर उठकर ब्रह्म को जाना जा सकता है। "सर्वात्मा" का तात्पर्य ही है– क्रिया का अभाव । भूत, महाभूत, मर्त्य, अमर्त्य, मूर्त, अमूर्त, सत्, असत्, ब्रह्म, ब्रह्मविद्या आदि का विषद विवेचन है । वायु और अंतरिक्ष अमूर्त हैं, ये अमृत हैं। पृथ्वी आदि तीन भूत मूर्त हैं। अतः विश्लेषण ही मुख्य हैं कि ब्रह्म का क्या स्वरूप है, उसकी प्राप्ति का फल आदि अनेक तथ्य हैं ।

वैसे तो ब्रह्म प्रज्ञा से अथवा नाम रूप से अनेक रूपों वाला जाना जाता है लेकिन परमार्थतः वह अनेक रूपों वाला नहीं होता है। अपनी एकरूपता से ही वह अविद्या से उत्पन्न प्रज्ञा से अनेक रूप में भासित होता है । ब्रह्म का कोई कारण नही है वह बोद्धा है, अर्थात् जानने वाला है, सर्वानुभू है, सब प्रकार अनुभव करता है । यह अमृत और अभय है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य किस गति को प्राप्त होता है और कर्म से क्या प्राप्त करते हैं । कर्म और ज्ञान एक दूसरे के विरोधी हैं, दोनों का स्वभाव अलग है। जीव कर्म से बंधता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है। ब्रह्मविद्या समस्त साधनों को त्याग कर पुरुषार्थ का साधन बनती है । ब्रह्मविद्या से याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद में अमृतत्त्व का साधन बताया है। यह संक्षेप में बृहदारण्यक उपनिषद् का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद का सार है।

4.8 शब्दावलियां

1. **प्रज्ञानघन–** ब्रह्म की सत्ता तो सृष्टि के पूर्व की है, जब वायु भी नही था तब भी वह था। जिस प्रकार चिंगारी, धूम, अंगार और ज्वालायें इस विभाग के पूर्व वह सब अग्नि ही हैं। इससे अग्नि की एकता सिद्ध होती है। उसी प्रकार नाम रूप विकार को प्राप्त यह जगत् उत्पत्ति से पूर्व प्रज्ञानघन ही था। यही अव्यक्त में व्यक्त संसार है, असत् में सत् की व्याप्ति है।

2. **विज्ञानघन–** बिना प्रयत्न के ही जैसे प्राणी की श्वसन क्रिया होती है उसी प्रकार उस विज्ञानघन से यह जगत् उत्पन्न है। ब्रह्म नित्य और पारमार्थिक है इसलिए महद्भूत है। उसका अन्त नही है, इसलिए अनन्त है। वह विज्ञानघन है। घन शब्द से अन्य जाति के वस्तु का निषेध होता है– जैसे सुवर्ण घन लोहघन इसमें अन्य जाति के वस्तु का निषेध है, इसके भीतर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। घन शब्द के प्रयोग से विज्ञान में अन्य वस्तु का न होना निश्चित होता है।
3. **सैन्धव–** सिन्धु के विकार का नाम सैन्धव है। सिन्धु शब्द जल का पर्याय है । स्यन्दन बहाव के कण जल सिन्धु है । उससे उत्पन्न होने वाला सैन्धव है। सिन्धु नमक का कारण है। जल में पड़ने पर वह उसमें विलय हो जाता है।
4. **महँ–** परमात्मा सबसे महान् है। आकाश का भी जनक होने से उसे महँ कहा जाता है। लोक में पर्वतादि भी महान् है परन्तु वह परमार्थ नही हैं, नित्य और अबाधित नही है। ब्रह्म नित्य और पारमार्थिक है, इसलिए महद्भूत है।
5. **खिल्य भाव–** जन्म–मरण, सांसारिक मोह माया, पिपासा आदि खिल्य भाव के अनतर्गत आते है।
6. **अपारम–** जो असीम है। जिसके अनन्तता की कोई सीमा नही है।
7. **पारमार्थिक स्वरूप–** समुद्र में नदी के समान प्रज्ञानघन ब्रह्म में लीन हो जाता है। जल में प्रतिबिंबित सूर्य, चन्द्र, जल के समाप्त होने पर या जल के न रहने पर प्रतिबिम्ब नष्ट हो जाता है लेकिन चन्द्रादि का जो स्वरूप रह जाता है, वह पारमर्थिक स्वरूप है।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर – 1.(क), 2. (ख), 3.(ग), 4..(घ), 5.(क), 6.(ख), 7.(ग), 8.(घ), 9.(क), 10.(ख), 11.(ग), 12.(घ), 13.(क), 14. (ख), 15.(ग), 16.(घ)

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बृहदारण्यकोपनिषद्, सानुवाद शांकरभाष्यसहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत्, 2076
2. कठोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत्, 2075
3- Prashnopanishad with the Commentary of Sankaracharya, Translated by Swami Gambhirananda, Advaita Ashrama, Publication Department 5 Delhi Entally Road, Kolkata-700014
4. छान्दोग्योपनिषद् सानुवाद शांकरभाष्य सहित गीताप्रेस, गोरखपुर-273005
5. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास प्रथम खण्ड, वेद, प्रधान सम्पादक-पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय, सम्पादक-प्रो0 व्रजबिहारी चौबे, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1996
6. निरुक्तम्, महामहोपाध्याय श्री छज्जूराम शास्त्री, मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2016
7. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, तृतीय भाग ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ, लेखक-पं0 भगवदत्त, 2016
8. ए प्रेक्टिकल वैदिक डिक्सनरी, सूर्यकान्त आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली-1981
9. वैदिक कोषः हंसराज एवं भगवद्दत्त, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2002

10. छान्दोग्य ब्राह्मण, गुणविष्णु और सायण भाष्य सहित दुर्गामोहन भट्टाचार्य विरचित भाष्य सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, ग्रन्थांक-38, 1959

11. शब्दकल्पद्रुम : राधाकान्तदेव बहादुर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी, विक्रम सम्वत् 2024

12- The Mandukya Upnishad with Gandapad's Karika and Sankara's Commentary – Swami Nikhilananda Adwaita Ashrama (Publication Department), Kolkata-700014, 1987

13- Vivekachudamani of Shankarachrya]Translated by Swami Turiyananda, Sri Ramkrishna Math, Mylapore, Madras-600 004, 1991

14. ऋग्वेद संहिता, (पाँचभाग) सायण–भाष्य सहित, वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे

15. ऋग्वेद संहिता, (चार भाग) हिन्दी अनुवाद सहित, स्वाध्याय मण्डल पारडी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY